# समकालीन हिंदी कहानी में मुस्लिम महिला
## दशा और दिशा

तहसीन मज़हर*

**महिलाओं की स्थिति समाज में हमेशा से ही दोयम दर्जे की रही है, चाहे वह किसी भी वर्ग की हों। खासकर मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में कम ही बदलाव आया है। हालाँकि बीच-बीच में इस समाज की महिलाओं की कामयाबी की खबरें ज़रूर मिलती हैं लेकिन इससे ये साबित नहीं होता है कि सभी महिलाओं की स्थिति बदली है। वे संघर्ष कर रही हैं और धीरे-धीरे मज़बूती से आगे बढ रही हैं। साहित्य से हमेशा से उम्मीद की जाती रही है कि वह समाज का सही-सही चित्रण करेगा। हालाँकि हमेशा ऐसा नहीं हो पाता है कि लेखक समाज में हो रहे बदलावों को सही-सही ही चित्रित करे। लेख में जानने की कोशिश की गई है कि हिंदी कहानीकार वर्तमान में अपने लेखन के माध्यम से मुस्लिम महिला का सही चित्रण कर पाने में सफ़ल हुए या नहीं या यथार्थ से इतर उनकी कमज़ोर छवि ही चित्रित की जा रही है।**

साल 2014 के मध्य में हमारे देश के पिछड़े माने जाते रहे बिहार से एक सुखद खबर आई कि यहाँ से पहली बार कोई मुस्लिम महिला आई.पी.एस. बनीं हैं। बिहार की इस पहली मुस्लिम महिला आई.पी.एस. का नाम है— गुंचा सनोबर। ज़ाहिर है, यह देश के सामाजिक ताने-बाने में मुस्लिम महिलाओं की दखल का संकेत भर है। यह दखल सकारात्मक है। लेकिन यह भी सच है कि मुस्लिम महिलाओं की चुनौतियाँ देश के अन्य वर्गों से कहीं ज़्यादा और गंभीर हैं। हिंदू समुदाय की महिलाओं की बात करें (अगर दलित महिलाओं को छोड़ दिया जाए) तो न केवल उनकी सामाजिक स्थिति पहले से बेहतर हुई है, बल्कि उनमें स्वतंत्र चेतना का विकास भी हुआ है। लेकिन दूसरी ओर मुस्लिम महिलाएँ आज भी उसी दोयम दर्जे में कैद हैं।

* *शोध छात्रा*, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, जामिया नगर, नयी दिल्ली 110025

Chapter 5.indd 47 09-08-2017 16:44:13

इसमें उनकी सामाजिक स्थिति, धार्मिक कट्टरता की तीव्रता, पुरुषों का वर्चस्व, आर्थिक बदहाली सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं। और यही वजह है कि गुंचा सनोबर जैसी सामाजिक स्थिति हासिल करने के लिए मुस्लिम औरतों को इतना लंबा इंतज़ार करना पड़ रहा है। बेशक मुस्लिम समाज में महिलाओं की स्थिति ज़्यादा बदतर है, लेकिन यहाँ भी महिलाएँ अपने हक के लिए आवाज़ उठा ही नहीं रहीं बल्कि बुलंदी भी हासिल कर रही हैं। इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि मुस्लिम महिलाओं की यह चेतना और लड़ाई हिंदी की समकालीन कहानी में नज़र नहीं आ रही जिस तरह से हिंदू महिलाओं की नज़र आ रही है। उर्दू में तो इस्मत चुगतई और कुर्रतुल ऐन हैदर जैसे नाम हैं, जिन्होंने मुस्लिम समुदाय की औरतों को सशक्त आवाज़ दी और काफ़ी ख्याति भी हासिल की। जबकि हिंदी कहानी में ऐसी लेखिकाओं और ऐसी सशक्त चित्रण का अभाव नज़र आता है। राही मासूम रज़ा और शानी जैसे पुरुष नाम तो हैं और उनके कथा-साहित्य में मज़बूत महिला पात्र भी हैं। लेकिन उस पीढ़ी के बाद अगर हम समकालीन कहानी में देखें तो न तो मुस्लिम लेखिकाएँ उस तरीके से आ पा रही हैं और न ही मुस्लिम पात्रों में महिलाओं की ऐसी दमदार मौजूदगी है।

मुस्लिम लेखक और लेखिकाएँ किस तरह की मुस्लिम महिला पात्र गढ़ रहे हैं? आखिर समकालीन हिंदी कहानी में कैसी और किस तरह महिला पात्रों का चित्रण हो रहा है? क्यों वे समकालीन समाज में अपनी स्थिति के मुताबिक नज़र आ रही हैं, उनकी चेतना और संघर्ष नज़र आ रहा है या वह पूर्वाग्रहों से भरा हुआ है? इसकी पड़ताल ज़रूरी है, वह भी हिंदी साहित्य के उस दौर में जब महिला विमर्श सबसे ज़्यादा धारदार, मुख्य बहसों में है और पढ़ा जा रहा है। हालाँकि हिंदी की सभी पत्रिकाओं में यह ज़रूर नज़र आ रहा है। तो महिलाओं की सामाजिक स्थिति ही नहीं बल्कि आर्थिक स्थिति और उनकी देह की आज़ादी पर भी बात हो रही है। बकौल शालिनी माथुर, हिंदी साहित्य में 'मर्दों के खेला में औरत का नाच' (*तहलका* के जनवरी, 2014 के अंक में महिला विमर्श पर लेख) हो रहा है। लेकिन इन सबके बीच यहाँ मुस्लिम महिला कहाँ है? उसकी क्या जगह है? मुस्लिम लेखक और लेखिकाएँ हिंदी में किस तरह के मुस्लिम महिला पात्र गढ़ रहे हैं?

मैं समकालीन हिंदी की कुछ ऐसी कहानियों पर बात करूँगी जिनमें मुस्लिम महिला पात्रों की मौजूदगी है। इन संभावित कहानियों में उदय प्रकाश की कहानी 'टेपचू', असगर वजाहत की 'शाह आलम कैम्प की रूहें' तथा अन्य कहानियाँ, सुकेश साहनी का 'पुल', गुलज़ार का 'धुआँ', मेहरुन्निसा परवेज का 'पासंग', ज़किया ज़ुबैरी की कहानी 'मेरे हिस्से की धूप', मो. आरिफ़ का 'मौसम' तथा अन्य कहानियाँ, *हंस* के मई, 2015 अंक में प्रकाशित रुखशंदा रूही की कहानी 'फिर नज़रों में फूल महके' आदि शामिल हैं।

इन कहानियों के मुस्लिम महिला पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन, सामाजशास्त्रीय अध्ययन अहम है। गैर-मुस्लिम महिला पात्रों के साथ या उनके विमर्शों के साथ भी मुस्लिम महिला पात्रों की तुलना

हो सकेगी। मुस्लिम महिलाओं की सामाजिक स्थिति की व्याख्या और इन पात्रों की तुलना भी हो सकेगी। वहीं अगर मुस्लिम महिला पात्र सही से नहीं पेश हो पा रहे हैं तो आखिर इसकी क्या वजह है? यह सवाल हिंदी साहित्य में उनके प्रतिनिधित्व से भी जुड़ा हुआ है।

कुल मिलाकर समकालीन हिंदी कहानियों में मुस्लिम महिलाओं के चित्रण पर बातचीत काफ़ी अहम है कि उनकी उपस्थिति कैसी है। उनकी सामाजिक चेतना और स्थिति की तुलना में कहानियों में कैसी उपस्थिति है?

**उदय प्रकाश की 'टेपचू'** — इस कहानी में मुस्लिम औरतों का बेहद दयनीय हाल बताया गया है। कहानी के मुख्य पात्र टेपचू की माँ फ़िरोज़ा का संघर्ष दिखाया गया है कि किस तरह वह आवारा पति के मर जाने पर कठिन हालात में टेपचू का पालन-पोषण करती है। इसमें मुस्लिम समाज की दयनीय हालत और गरीबी का वीभत्स चित्रण है।

उदय प्रकाश की टेपचू कहानी मुस्लिम समाज में शरियत कानून के मुताबिक पुरुष चार शादियाँ कर सकता है। अब्बी की दो पत्नियाँ थीं, पहली दर्ज़ी के साथ भाग जाती है। दूसरी पत्नी फ़िरोज़ा है। आवारा पति अब्बी की मौत के बाद फ़िरोज़ा के जीवन में जैसे पतझड़ आ गया। बेटे टेपचू की परवरिश के लिए हाड़-तोड़ मेहनत करती है। गाँव के छिछोरे लड़कों की छींटाकशी को झेलती है और अंत में मर जाती है।

**मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानी 'पासंग'** — इस कहानी में महिला पात्र जानती हैं कि उनका युगों से शोषण हो रहा है लेकिन यह जानते हुए भी वह हालात से समझौता करती नज़र आ रही है। इसमें एक बयान देखिए, "युगों से खुद लुटती रही हैं और अपनी नई पीढ़ी को भी लुटने के लिए प्रेरित करती है।" इस कहानी में दादी जानती है कि उनकी शादी भी उनसे बिना पूछे हुई और अब जब उनकी पोती की शादी भी बिना उसकी सलाह के हो रही है फिर भी वह चुप रहती हैं और युवा महिलाओं में भी छटपटाहट तो है लेकिन मज़बूती नहीं नज़र आ रही है।

**ज़किया ज़ुबैरी की कहानी 'मेरे हिस्से की धूप'** — मेरे हिस्से की धूप में दिखाया है कि औरत जैसे बच्चे पैदा करने की मशीन है और पुरुष को उसकी संवेदना से कोई मतलब नहीं है। अशिक्षा और गरीबी से परिवार प्रभावित होता है। शम्मो की शादी की समस्या। योग्य वर ढूँढ़ने की तथा उन सबसे ऊपर एक लड़की की मन:स्थिति का चित्रण काफी यथार्थवादी तरीके से किया गया है। अंत में छोटी बहन साढ़े अठारह साल की रानी का अंकल (शादीशुदा और उम्रदराज) से विवाह पाठकों के सामने प्रश्न खड़ा करता है कि क्या सभी महिला पात्र अपनी इस स्थिति के लिए स्वयं ज़िम्मेदार हैं या उनका सामाजिक प्रवेश। अशिक्षा और गरीबी उनकी ज़िंदगी के लिए सबसे बड़ा अभिशाप साबित होती है। ज़ाहिर है इसमें महिलाएँ बच्चा पैदा करने की मशीन ही बनी हुई हैं। इस तरह मुस्लिम महिलाएँ क्या इतनी लाचार हैं?

**सुकेश साहनी के 'पुल' कहानी** — इस कहानी में पति अपनी पत्नियों पर संदेह जताते हैं कि वे असंवेदनशील और झगड़ालू हैं, लेकिन आखिर

में पता चलता है कि ऐसा नहीं है। कहानी के नायक को राह चलते एक खोई हुई बच्ची मिलती है। जब वह रिक्शे से पुलिस के पास जाता है तो पुलिस रिक्शेवाले के ज़िम्मे बच्ची को दे देता है। रिक्शेवाला घबराता है कि उसकी पत्नी खड़ूस है पता नहीं कैसा बर्ताव करे। तो नायक को भी डर रहता है कि उसकी पत्नी को लग रहा है कि बच्ची के नाम पर कुछ पैसे रिक्शेवाले को देकर वह मूर्खता कर रहा है। लेकिन असल में दोनों महिलाएँ अपने-अपने पतियों से ज़्यादा संवेदनशील और ज़िम्मेदार निकलती हैं।

**मो. आरिफ़ की कहानियाँ** — समकालीन मुस्लिम कहानीकारों में मो. आरिफ को बेहतर माना जा रहा है। उनकी कहानियाँ चर्चित भी हुई हैं। लेकिन उनकी कहानियों में भी मुस्लिम महिला चरित्रों की कोई दमदार मौजूदगी नहीं रहती। चाहे उनकी कहानी चोर-सिपाही हो या मौसम, उनकी कहानियों में मुस्लिम-चेतना तो सशक्त तरीके से मौजूद है लेकिन मुस्लिम महिला पात्रों को लेकर कुछ खासा उत्साह नहीं दिखाई देता।

**गुलज़ार की कहानी 'धुआँ'** — इस कहानी में महिला नायिका काफ़ी सशक्त तरीके से चित्रित हुई हैं। वह न केवल कट्टर समाज से लड़ती, संघर्ष करती है बल्कि आखिर दम तक पीछे नहीं हटती। भले ही वह मारी जाती है। इसमें सशक्त महिला पात्र चौधराईन अपने पति की अंतिम ख्वाहिश को पूरा करना चाहती थी। वह अपने पति की आखिरी ख्वाहिश के कारण उसके शव को जलवाना चाहती है। यह जानते हुए भी कि मुस्लिम परंपरा के अनुसार शव को दफ़नाया जाता है। लेकिन, पति की ख्वाहिश को पूरा करना उसकी मुहब्बत और सशक्तता का प्रमाण है किंतु धर्म गुरु और समाज इसे आसानी से हज़म करने वाले नहीं। पूरे मोहल्ले में खबर आग की तरह फैल जाती है।

कुल्लू के षड्यंत्र से चौधराइन को घर पर ज़िंदा जला दिया जाता है। यह विडंबना ही तो है कि यदि समाज की रूढ़िवादी परंपरा से अलग कोई सोचे तो उसे तमाम यातनाएँ झेलनी पड़ती हैं। परिजन भी धर्म के आगे व्यक्ति को महत्त्व नहीं देते। लेकिन यह सुखद है कि यहाँ महिला का चरित्र काफ़ी मज़बूती से खड़ा रहता है।

**रुखशंदा रूही की कहानी 'फ़िर नज़रों में फूल महके'** — हाल ही में प्रकाशित रुखशंदा रूही की कहानी 'फिर नज़रों में फूल महके' में नायिका के लंबे बाल होने की वजह से उसे उसका प्रेमी डायन कहकर छेड़ता है तो बाल कटा लेने पर उसे डपटता भी है। इस कहानी से मेरे मन में सवाल खड़ा हुआ कि क्या अब भी मुस्लिम महिलाओं का विमर्श उनकी खूबसूरती तक सिमटा हुआ है, मानो लंबे बाल होना ही उनके लिए काफ़ी अहम है? वह भी इस वक्त जब अन्य वर्गों की महिलाओं की चेतना कहीं आगे बढ़ गई है।

इस तरह अगर हम देखें तो मुस्लिम महिला पात्रों की स्थिति वैसी नहीं है। अधिकतर कहानियों में वह दबी-कुचली और बेहद दयनीय स्थिति में हैं। उनकी गरीबी और लाचारी का ही चित्रण है। हिंदी कहानियों में अगर इन सबसे वह आगे भी बढ़ती है तो रुखशंदा रूही के पात्र की तरह अपनी खूबसूरती के विमर्श तक

ही अटकी हुई है। वहीं मौजूदा सामाजिक स्थिति को देखें तो तमाम चुनौतियों तथा बाधाओं के बावजूद मुस्लिम महिलाएँ अपनी सशक्त मौजूदगी दर्ज करा रही हैं। ऐसे में समकालीन कहानियों में मुस्लिम महिला पात्रों का आज भी दयनीय और लाचार होना विडंबना ही है।

## ग्रंथ सूची


आरिफ़, मो. 2015. 'चोर-सिपाही'. भारतीय ज्ञानपीठ. नयी दिल्ली.

गुलज़ार. 'धुआँ'. http://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=366&pageno=1. 10-08-2016 को देखा गया.

जुबैरी, ज़किया. 'मेरे हिस्से की धूप'. http://www.abhivyaktihindi.org/kahaniyan/vatan_se_door/2009/mere_hisseki_*dhoop*/mere1.htm. 10-08-2016 को देखा गया.

परवेज़, मेहरुन्निसा. 2004. 'पासंग'. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

प्रकाश, उदय. 'टेपचू'. http://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=2493&pageno=1. 10-08-2016 को देखा गया.

माथुर, शालिनी. 2014. 'मर्दों के खेला में औरत का नाच'. *तहलका हिंदी*. जनवरी 6. नयी दिल्ली.

मासूम रज़ा, राही. 2015. *आधा गाँव*. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

रुही, रुखशंदा. 2015. 'फिर नज़रों में फूल महके'. *हंस*. मई. नयी दिल्ली.

शानी. 2007. *काला जल*. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

साहनी, सुकेश. 'पुल'. http://www.abhivyaktihindi.org/kahaniyan/2010/pul/pul2.htm. 10-08-2016 को देखा गया.